दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

रि.या.(सि.) सं. 3900/1998

सुरक्षित तिथि: 4 जुलाई 2008

निर्णय तिथि: 24 जुलाई 2008

मल्कीयत सिंह ....याचिकाकर्ता

द्वारा : श्री एम.जी.कपूर, अधिवक्ता।

बनाम

भारत संघ व अन्य ...प्रत्यर्थीगण

द्वारा : श्री ए.के. भारद्वाज, अधिवक्ता।

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय किशन कौल

माननीय न्यायमूर्ति श्री मूल चंद गर्ग

1. क्या स्थानीय समाचार पत्र के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है ? हाँ
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नही ? हाँ

3. क्या निर्णय डाइजेस्ट में प्रकाशित
किया जाना चाहिए ? हाँ

न्या. मूल चंद गर्ग

1. याचिकाकर्ता भारतीय सेना में सिपाही के रूप में भर्ती हुआ था और बाद में उसे नायक के रूप में पदोन्नत किया गया था। प्रासंगिक समय में, वह मुख्यालय 15 कोर आर्टिलरी ब्रिगेड में सेवारत था और एक ड्राइवर के रूप में कार्यरत था। उसका मामला यह है कि दिनांक 20 मई, 1995 को उन्होंने एक सैन्य ट्रक में लिफ्ट ली, जिसे नायक (डीएचटी) ओम प्रकाश चला रहा था। वह अपनी जिप्सी का पंखा बेल्ट बदलवाने के लिए यूनिट मुख्यालय जा रहा था, क्योंकि पुराना पंखा बेल्ट घिस गया था। वह ड्राइवर के साथ आगे की सीट पर बैठा था। ट्रक के लगभग 200 गज की दूरी तय करने के तुरंत पश्चात, सैन्य खुफिया के एक एन.सी.ओ. ने ट्रक को रोका और पाया कि नायक ओम प्रकाश अनधिकृत रूप से ट्रक में दो बैरल पेट्रोल ले जा रहा था। नायक ओम प्रकाश और याचिकाकर्ता दोनों को अभिरक्षा में ले लिया गया। नायक ओम प्रकाश के खुलासे पर पता चला कि पी.वी.राजन नाम का हवलदार भी इस सौदे में शामिल था। प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्ता और अन्य दो के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करने का निर्णय किया। यद्यपि प्रत्यर्थी का यह कहना है कि जाँच न्यायालय का आयोजन किया गया था, लेकिन अभिलेख पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है। हालांकि, यह अभिलेख की बात है कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ अन्य सह-अभियुक्तों के मामले में साक्ष्य का सारांश दर्ज किया गया था, जिसमें समरी

कोर्ट मार्शल (संक्षेप में एससीएम) समाप्त होने तक उनमें से किसी एक के मामले का निपटान किए बिना अभियुक्त व्यक्तियों को एक-दूसरे के खिलाफ गवाह के रूप में स्थापित किया गया था।

2. याचिकाकर्ता के मामले में साक्ष्य का सारांश दिनांक 23.6.1995 को दर्ज किया गया था। नायक ओम प्रकाश से गवाह सं. 2 के रूप में और हवलदार पी. वी. राजन से गवाह सं. 3 के रूप में पूछताछ की गई थी। अन्य दो अभियुक्त व्यक्तियों के मामले में भी दिनांक 22.6.1995 को याचिकाकर्ता से उनके खिलाफ गवाह के रूप में पूछताछ करके इसी तरह की कवायद की गई थी। इसके बाद दिनांक 8 सितंबर 1995 को तीसरे प्रत्यर्थी द्वारा एससीएम आयोजित करके एक संयुक्त सुनवाई की गई थी। बिना किसी पुष्टि के "दोषी" की दलील दर्ज करने के बाद तीनों व्यक्तियों को दिनांक 08.9.1995 को सेवा से बर्खास्त करने की सजा सुनाई गई। याचिकाकर्ता का कहना है कि सेना नियमों के नियम 115(2) की आवश्यकता का भी पालन नहीं किया गया। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि चूंकि साक्ष्य का सारांश सेना के नियमों और संविधान के खिलाफ होने के कारण अनियमित रूप से दर्ज किया गया था, इसलिए कोर्ट मार्शल की कार्यवाही को पूरी तरह से रद्द किया जाना चाहिए।

3. याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा कथित तौर पर दोषी की दलील दर्ज करने की प्रक्रिया भी नियम 115 (2) के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार दर्ज नहीं की गई है, यहां तक कि, न तो कोई साक्ष्य दर्ज

किया गया था और न ही दोषी की दलील दर्ज करने से पहले आवश्यक चेतावनी अभियुक्त को दी गई है। संदर्भ के लिए उक्त नियम नीचे उद्धृत किए गया है:-

> *"जहां कोई अभियुक्त "दोषी" होने की दलील देता है, ऐसी दलील और इस नियम के उपनियम (2) के अनुपालन का तथ्य न्यायालय द्वारा निम्नलिखित तरीके से दर्ज किया जाएगा:-*
>
> *"अभियुक्त के "दोषी" होने की दलील दर्ज करने से पहले न्यायालय ने अभियुक्त को उन आरोपों का अर्थ समझाया जिनके लिए उसने "दोषी" होने का दावा किया था और यह सुनिश्चित किया कि अभियुक्त उन आरोप (ओं) की प्रकृति को समझ गया था जिनके लिए उसने "दोषी" होने का अनुरोध किया था। न्यायालय ने अभियुक्त को दलील के सामान्य प्रभाव और प्रक्रिया में अंतर के बारे में भी बताया, जिसका उक्त दलील के परिणामस्वरूप पालन किया जाएगा। न्यायालय ने खुद को संतुष्ट किया कि अभियुक्त आरोपों और "दोषी" दलील के प्रभाव को समझता है, उसे स्वीकार करता है और उसे दर्ज करता है। इस प्रकार नियम 115 (2) के प्रावधानों का अनुपालन किया जाता है।"*

4. यह प्रमाण पत्र फिर से एक अलग कागज पर उपलब्ध है और कार्यवाही की निरंतरता में नहीं है, इसके अलावा यहाँ कोई भी साक्ष्य नहीं है जिसे याचिकाकर्ता को अपनी अभिवाक देने के लिए बुलाने से पूर्व दर्ज किया गया हो और इस प्रकार यह नियमावली के अनुसार नहीं है। तिथि को एक अलग

परिपेक्ष में लिखा गया है इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि इन परिस्थितियों में, दलील को "दोषी नहीं होने" के रूप में माना जाना चाहिए और सेना नियमावली के नियम 116 (2) के तहत विहित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए, जो नहीं किया गया है। उक्त नियम निम्नानुसार है: -

> ***"नियम 116 (2): किसी आरोप पर "दोषी" होने की दलील दर्ज होने के बाद (यदि किसी अन्य आरोप पर किसी दिन सुनवाई नहीं होती है), न्यायालय साक्ष्य का सारांश पढ़ेगा और उसे कार्यवाही में संलग्न करेगा या यदि ऐसा कोई सारांश नहीं है, तो वह पर्याप्त साक्ष्य लेगा और उसे दर्ज करेगा ताकि वह सजा निर्धारित कर सके और समीक्षा अधिकारी अपराध से जुड़ी सभी परिस्थितियों को जान सके। "दोषी नहीं" होने की दलील के मामले में साक्ष्य उसी तरह लिया जाएगा जैसा इन नियमों द्वारा निर्देशित है।***

5. याचिकाकर्ता के अनुसार उन्होंने सेना के अधिकारियों से इस बारे में बात की, लेकिन उनसे कोई सुनवाई नहीं हुई। इसके बाद याचिकाकर्ता ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष पूरी कार्यवाही को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की, जिसे उचित मंच पर दायर करने की अनुमति के साथ वापस लेने की अनुमति दी गई। इसके बाद याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका दायर की है। रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने “साक्ष्य का सारांश” शीर्षक के तहत कोर्ट मार्शल से संबंधित अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिए ज्ञापन के पैरा 4 का भी संदर्भ दिया है। उक्त ज्ञापन का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"4. यदि किसी मामले में दो या अधिक व्यक्तियों पर किसी अपराध में मिलीभगत का संदेह हो, और यह आवश्यक पाया जाए कि उनमें से किसी एक को अपराध के संबंध में आरोपित अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में बुलाया जाए, तो दो में से एक रास्ता अपनाया जाना चाहिए:-

(i) उसके विरुद्ध कार्यवाही बंद कर दी जानी चाहिए तथा उसके विरुद्ध पहले से लगाए गए किसी भी आरोप को खारिज कर दिया जाना चाहिए; या

(ii) यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि उसके विरुद्ध मामले का निपटारा संक्षेप में किया जाए या सैन्य न्यायालय द्वारा सुनवाई की जाए, इससे पूर्व कि उन संबंधित व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण चलाया जाए जिनके विरुद्ध उसे साक्ष्य देना है; और उसे साक्षी के रूप में तभी पेश किया जाए जब उसे पहले ही बरी या दोषी ठहराया जा चुका हो।"

6. नियमों में स्वीकारोक्ति और *स्वीकारोक्ति* के संबंध में सैन्य कानून निर्देशिका (भाग-I) में उल्लिखित प्रक्रिया पर भी ध्यान देना उपयुक्त होगा जिसमें वे अनुदेश शामिल हैं जिनका सेना प्राधिकारी द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए। इसे यहाँ पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"27. स्वीकारोक्ति केवल उस व्यक्ति के विरुद्ध ही स्वीकार्य है जिसने इसे किया है-सामान्य नियम यह है कि स्वीकारोक्ति किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है, सिवाय उस व्यक्ति के जिसने

इसे किया है। लेकिन एक साथी द्वारा दूसरे की उपस्थिति में किया गया स्वीकारोक्ति इस सीमा तक बाद वाले के विरुद्ध स्वीकार्य है, कि यदि वह उसे फंसाता है, तो आरोप के तहत उसकी चुप्पी का उपयोग उसके विरुद्ध किया जा सकता है, जबकि दूसरी ओर, आरोप का उसका तुरंत खंडन उसके पक्ष में जा सकता है। ***भारतीय साक्ष्य अधिनियम में यह भी कहा गया है कि जब दो या अधिक व्यक्तियों पर एक ही अपराध के लिए संयुक्त रूप से वाद चलाया जाता है, तो ऐसे व्यक्तियों में से किसी एक द्वारा किया गया इकबालिया बयान, जो स्वयं को तथा उसके साथ संयुक्त रूप से वाद चलाए गए किसी अन्य साथी को प्रभावित करता है, साबित होने पर न्यायालय द्वारा उस अन्य साथी के साथ-साथ उस व्यक्ति के विरुद्ध भी विचार किया जा सकता है जिसने यह बयान दिया है (भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 30)। जब संयुक्त रूप से वाद चलाए गए कई व्यक्तियों में से कोई एक दोषी होने की दलील देता है, तो उस पर अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से वाद नहीं चलाया जाता है, और इसलिए उसके द्वारा किया गया कोई भी इकबालिया बयान अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध विचार में नहीं लिया जा सकता है।*** *हालांकि, किसी साथी के कबूलनामे को, कुछ परिस्थितियों में, "विचार में लिया जा सकता है" और इस प्रकार सह-अभियुक्त के खिलाफ मामले के विचार में एक अन्य तत्व हो सकता है, लेकिन यह अनिवार्य रूप से शपथ पत्र साक्ष्य से कम वजन का होना चाहिए, यहाँ तक कि उस साथी के शपथ पत्र साक्ष्य से भी कम, जिस पर संयुक्त रूप से वाद नहीं चलाया गया हो। तदनुसार, न्यायालयों ने इस प्रकार के साक्ष्य के संबंध में निम्नलिखित नियम स्थापित किए हैं:-*

(क) जहाँ कोई अन्य साक्ष्य नहीं है, वहाँ अकेला ऐसा स्वीकारोक्ति उस व्यक्ति की दोषसिद्धि को उचित नहीं ठहराएगा जिस पर उसके कर्ता के साथ मिलकर वाद चलाया जा रहा है;

(ख) सह-अभियुक्त के स्वीकारोक्ति की पुष्टि स्वतंत्र साक्ष्य से होनी चाहिए, जिसमें इससे प्रभावित सभी व्यक्तियों की पहचान और अपराध किए जाने के तथ्य दोनों शामिल हों।

7. यह निवेदन किया गया था कि चूंकि उपरोक्त प्रक्रिया का सेना के अधिकारियों द्वारा पालन नहीं किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता और अन्य दो सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा दिए गए बयान उसके मामले में अस्वीकार्य थे और, इसलिए, साक्ष्य का संक्षिप्त विवरण अवैध रूप से अभिलिखित गया था।

8. याचिकाकर्ता ने "साक्ष्य का सारांश" (पूर्वोक्त) शीर्षक के तहत सेना न्यायालय से संबंधित अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिए ज्ञापन के पैरा 4 का हवाला देते हुए कहा कि अगर सह-अभियुक्त में से किसी एक को दूसरे सह-अभियुक्त के खिलाफ गवाह के तौर पर पेश किया जाता है, तो पहले सह-अभियुक्त के खिलाफ आरोपों का निपटान किए बिना, जिसे गवाह के तौर पर पेश किया गया है, यह सह-अभियुक्त को खुद को दोषी ठहराने के लिए मजबूर करने के बराबर है, इस प्रकार यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 उप-खंड (3) का उल्लंघन है (जिसे आगे संविधान के रूप में संदर्भित किया गया है)।

यह सेना नियम, 1954 (संक्षेप में "सेना नियम") के नियम 23 का भी उल्लंघन करता है।

9. सेना नियमावली के नियम 23(3) में निम्नानुसार प्रावधान है -

> ***"23. साक्ष्य के संक्षिप्त विवरण को लिखने के लिए प्रक्रिया। (3)*** *प्रत्येक साक्षी का साक्ष्य, जब वह नियमानुसार लिख जा चुका हो, उसे शुरू से अंत तक पढ़कर सुनाया जाएगा और उसके द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा, अथवा यदि वह लिख नहीं सकता है तो उसके हस्ताक्षर और साक्षीगण द्वारा उसका नाम प्रमाणित किया जाएगा, जो कि अभिलेखित साक्ष्य की सत्यता के प्रतीक के रूप में होगा। अभियुक्त के विरुद्ध सभी साक्ष्य दर्ज होने के बाद, अभियुक्त से पूछा जाएगा- "क्या आप कोई बयान देना चाहते हैं" जब तक आप स्वयं न चाहें, आपको कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जो कुछ तुम कहोगे, वह लिख लिया जाएगा और साक्ष्य में दिया जाएगा।" इसके बाद अभियुक्त द्वारा दिया गया कोई भी बयान लिख लिया जाएगा और उसे पढ़कर सुनाया जाएगा, लेकिन उस पर उससे प्रति परीक्षा नहीं की जाएगी। इसके बाद अभियुक्त अपने गवाहों को बुला सकता है, जिसमें अगर वह चाहे तो उसके चरित्र के बारे में कोई भी गवाह शामिल हो सकता है।"*

10. मूल अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि नियम 23(3) के तहत अभियुक्त को दी जाने वाली सावधानी का पालन नहीं किया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्यवाही की निरंतरता में नहीं है, बल्कि एक अलग

कागज पर लिया गया है, जिसके नीचे याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर भी नहीं हैं। पूर्व में कही गई उपरोक्त बातें ज्ञापन के पैरा 4 का भी उल्लंघन है।

11. इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी के लिए सेना प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाही आरोपों पर विचार करने से लेकर एससीएम आयोजित करने तक की कार्यवाही पर आधारित है, जो कि अवैध है और इसलिए याचिकाकर्ता पर लगाई गई सजा को रद्द किया जाना चाहिए।

12. प्रति-शपथपत्र में प्रत्यर्थीगण ने इस दलील पर रिट याचिका को खारिज करने की मांग की है कि याचिकाकर्ता ने दोषी होने की दलील दी है और उसे सेना के नियमों के अनुसार सजा सुनाई गई है। यह प्रस्तुत किया गया कि ऐसी परिस्थितियों में याचिकाकर्ता को एससीएम द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने से वंचित किया जाता है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता ने सेना अधिनियम, 1950 (संक्षेप में उक्त अधिनियम) की धारा 164 (2) के अनुसार उसके लिए उपलब्ध वैकल्पिक उपाय का लाभ भी नहीं उठाया है।

13. तथ्यों के आधार पर, यह निवेदित किया गया है कि दिनांक 17 मई, 1995 को नायक (डी.एच.टी.) ओम प्रकाश और अन्य द्वारा एफ.एफ.डी. खुनसोब से 15 बैरल पेट्रोल एकत्र किया गया था। सभी 15 बैरल पेट्रोल को मुख्यालय शिविर में उतार दिया गया और एफ.ओ.एल. एन.सी.ओ., हवलदार (डी.एच.टी.) पी.वी. राजन की उपस्थिति में पी.ओ.एल. स्टोर में बंद कर दिया

गया। भंडारों की चाबी दिनांक 20 मई 1995 को याचिकाकर्ता को सौंप दी गई थी, और उसके पश्चात याचिकाकर्ता ने नायक ओम प्रकाश के साथ दो बैरल पेट्रोल (प्रत्येक 400 लीटर) निकाला और असदभावनापूर्ण इरादे से तीन टन वाहन में लोड किया। बैरल को छिपाने के लिए एक मफ़ से ढका गया था। नाइक ओम प्रकाश ने याचिकाकर्ता (सह-चालक के रूप में) के साथ तीन टन वजनी वाहन को छावनी क्षेत्र से बाहर सिविल क्षेत्र में आपराधिक इरादे और बाहरी बाजार में उसे बेचने के गुप्त उद्देश्य से चलाया। उसे दिनांक 20 मई, 1995 को 1650 बजे हवलदार (खुफिया) मनोहर लाल के द्वारा रंगे हाथों पकड़ लिया गया था। दोनों ने हवलदार (खुफिया) के समक्ष स्वीकारोक्ति किया कि वे उक्त मात्रा में बैरल मुख्यालय से नागरिकों को बेचने के लिए लाए थे। जैसा कि पहले टिप्पणी की गई है, उपरोक्त तथ्यों को याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता, नायक ओम प्रकाश और हवलदार पी.वी. राजन के विरुद्ध दिनांक 22 मई, 1995 से दिनांक 23 मई, 1995 तक जाँच न्यायालय आयोजित की गई थी, जब याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्तों के खिलाफ साक्ष्य दर्ज किए गए थे। इसके बाद, एक संयुक्त परीक्षण आयोजित किया गया, जिसमें उन्होंने आरोप स्वीकार कर लिया और सेना के नियमों के अनुसार उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

14. हमने पक्षकारगण को सुना है। याचिकाकर्ता ने अपनी ओर से **रंजीत ठाकुर** बनाम **भारत संघ एवं अन्य,** ए.आई.आर. 1987 उच्चतम न्यायालय

2386 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है। उपर्युक्त निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को ध्यान में रखना उचित होगा जो निम्नानुसार है:-

> *"यह "अधिनियम" एक विशेष कानून है जो सेना न्यायालय को एक विशेष क्षेत्राधिकार प्रदान करता है तथा इस "अधिनियम" के तहत अपराधों के परीक्षण के लिए एक विशेष प्रक्रिया निर्धारित करता है। "अधिनियम" के अध्याय VI में धारा 34 से 68 शामिल हैं जो इस "अधिनियम" के तहत विभिन्न अपराधों को निर्दिष्ट और परिभाषित करते हैं। अध्याय VII की धारा 71 से 89 विभिन्न दंडों को निर्दिष्ट करती हैं। सेना नियम 1954 के नियम 106 से 133 में एससीएम की प्रक्रिया और उसके समक्ष प्रक्रिया निर्धारित की गई है। अधिनियम और नियम एक आत्मनिर्भर संहिता का गठन करते हैं, जो अपराधों को निर्दिष्ट करते हैं तथा सेना न्यायालय द्वारा अपराधियों की नजरबंदी, अभिरक्षा और परीक्षण की प्रक्रिया निर्धारित करते हैं। अधिनियम में परिकल्पित प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों पर सेना न्यायालय के सारांश क्षेत्राधिकार की प्रचुरता और उस क्षेत्राधिकार के अधीन व्यक्ति को मिलने वाले परिणामों की गंभीरता के संदर्भ में और उसके अनुरूप विचार किया जाना चाहिए। प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को शक्तियों के दायरे के अनुरूप होना चाहिए। शक्ति जितनी व्यापक होगी, उसके प्रयोग में संयम की उतनी ही अधिक आवश्यकता होगी और तदनुसार, क़ानून द्वारा परिकल्पित प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का निर्माण भी उतना ही उदार होगा।*

विटारेली बनाम सीटन, 359 यूएस 535 में फ्रैंकफर्टर, जे. के अक्सर उद्धृत शब्द फिर से याद करने लायक हैं:

".....यदि रोजगार से बर्खास्तगी एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है, भले ही वह ऐसे अभिकरण को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदार हो, तो उस प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए
टिप्पणी.....
प्रशासनिक कानून का यह न्यायिक रूप से विकसित नियम अब दृढ़ता से स्थापित हो चुका है और, अगर मैं अभी कुछ भी जोड़ दूं, तो यह सही भी है। जो व्यक्ति प्रक्रियात्मक तलवार उठाता है, वह उसी तलवार से नष्ट हो जाएगा।"
"उसी विद्वान न्यायाधीश ने कहा, "स्वतंत्रता का इतिहास" काफी हद तक प्रक्रियागत सुरक्षा उपायों के पालन का इतिहास रहा है।"

15. दूसरी ओर प्रत्यर्थीगण ने ***भारत संघ एवं अन्य बनाम मेजर ए. हुसैन (आई.सी.-14827)*** (1998) 1 एस.सी.सी. 537 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय के पास सेना के अधिकारियों पर अधीक्षण का कोई अधिकार नहीं है। उपरोक्त निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा सेना न्यायालय कार्यवाही न्यायिक समीक्षा के अधीन है, लेकिन अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन सेना न्यायालय नहीं है। यदि सेना न्यायालय उचित रूप से आयोजित किया गया है और इसकी संरचना को कोई चुनौती नहीं है और कार्यवाही निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार है, तो उच्च न्यायालय या इस मामले में किसी भी न्यायालय को अपने हाथ रोक लेने चाहिए। यदि कोई सेना अधिनियम, सेना नियम, रक्षा सेवा विनियम और सेना के अन्य प्रशासनिक निर्देशों में सेना न्यायालय से संबंधित कानून के प्रावधानों को देखता है, तो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि निर्धारित प्रक्रिया उतनी ही निष्पक्ष है, जितनी कि आपराधिक वाद में अभियुक्त को प्रदान की जाती है। जब दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं, तो यह जांचना अनावश्यक है कि क्या परीक्षण-पूर्व जांच पर्याप्त थी या नहीं। उचित और पर्याप्त जांच की आवश्यकता क्षेत्राधिकार नहीं है और इसका कोई भी उल्लंघन सेना न्यायालय को तब तक अमान्य नहीं करता जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि अभियुक्त के साथ पक्षपात किया गया है या अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन किया गया है। सेना नियमों के नियम 149 का संदर्भ उपयोगी हो सकता है। उच्च न्यायालय को अभियुक्त की दोषसिद्धि और सजा की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी, जब साक्ष्य पर्याप्त थे, सेना न्यायालय को विषय-वस्तु पर अधिकार था और उसने निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया था और सजा देने का अधिकार उसके पास था।"

> 16. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, प्रत्यर्थी ने यह भी दलील दी कि एससीएम आयोजित करने से पहले प्रक्रिया का उल्लंघन याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आ सकता है, खासकर तब, जब उसने एससीएम के दौरान दोष स्वीकार कर लिया था और वह बहुत गंभीर आरोपों का दोषी था, अर्थात उसने गलत इरादे से दो गैलन पेट्रोल की चोरी करने के लिए उकसाया था, ताकि उसे अनधिकृत रूप से नागरिकों को बेचा जा सके।

17. उपरोक्त निर्णय में दिए गए प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन प्रस्ताव एक चेतावनी के साथ शुरू होता है, यानी, सजा के लिए कार्यवाही कानून यानी रक्षा सेवा विनियमन और अन्य प्रशासनिक निर्देशों के अनुसार की गई कार्यवाही के परिणामस्वरूप होनी चाहिए। यह भी एक सुस्थापित सिद्धांत है कि सजा भी कानून के अनुसार आयोजित उचित रूप से आयोजित सेना न्यायालय द्वारा दी जानी चाहिए और इसके अलावा दोषसिद्धि भी पर्याप्त साक्ष्य पर आधारित होनी चाहिए। दी गई सजा भी अपराध के अनुपात से अधिक नहीं होनी चाहिए और निर्णयों को उस मामले के दिए गए तथ्यों को समझना और लागू करना होगा जो न्यायालय की जांच के अधीन है।

18. इस स्तर पर, हम यह भी उचित समझते हैं कि उक्त अधिनियम और उसके तहत विरचित किए गए नियमों के तहत आरोप पर विचार करने के चरण से ही सेना न्यायालय आयोजित करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का संदर्भ दिया जाना आवश्यक है:

"(i) *सेना न्यायालय की प्रक्रिया आंशिक रूप से सेना अधिनियम (1950 का एक्सएलवीआई) (अधिनियम) में और आंशिक रूप से सेना नियम 1954 (नियम) में निर्धारित की गई है, जो अधिनियम की धारा 191 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय द्वारा बनाई गई है। सामान्य सेना न्यायालय द्वारा वाद की प्रक्रिया की विस्तृत रूपरेखा यह है। सैन्य संहिता के तहत किसी अपराधी को न्याय के कटघरे में लाने की दिशा में पहला कदम उसकी गिरफ्तारी या कारावास का आदेश देना है। (अधिनियम की धारा 101)। सैन्य अभिरक्षा का मतलब वरिष्ठ अधिकारी के विवेक पर खुली या करीबी गिरफ्तारी हो सकता है। नज़दीकी गिरफ़्तारी के तहत कोई व्यक्ति व्यायाम करने के अलावा अपने क्वार्टर या कारावास के स्थान से बाहर नहीं जाता है। गिरफ़्तार किए गए अधिकारी को उसकी गिरफ़्तारी की प्रकृति के बारे में लिखित रूप से सूचित किया जाता है। अनुशासनात्मक मामलों के शीघ्र निपटान को सुनिश्चित करने के लिए, अधिनियम की आवश्यकता है कि जब भी सैन्य कानून के अधीन किसी व्यक्ति को सैन्य अभिरक्षा में लिया जाता है, तो उसके खिलाफ आरोप की सभी सुविधाजनक गति से जांच की जानी चाहिए, (धारा 102)।*

(ii) पहली जांच आम तौर पर कंपनी कमांडर द्वारा की जाती है जो अपने द्वारा की गई जांच के आधार पर अभियुक्त के खिलाफ आरोप या आरोप तैयार करता है। इस तरह तैयार किए गए आरोपों की सूची के साथ, अभियुक्त को कमांडिंग ऑफिसर के सामने पेश किया जाता है जो मामले की औपचारिक जांच करता है। इस

जांच में अभियुक्त को आरोपित अपराध या अपराधों की प्रकृति बताई जाती है और मौजूद गवाह आरोप या आरोपों के समर्थन में अपनी जानकारी के अनुसार कुछ बयान देते हैं। अभियुक्त इस पूरी जांच के दौरान मौजूद रहता है और उसे गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने की पूरी आजादी दी जाती है। वह अपनी ओर से किसी भी गवाह को बुला सकता है और अपने बचाव में कोई भी बयान दे सकता है। [नियम 22(1)]

(iii) आरोप या आरोपों के समर्थन में गवाहों और अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत गवाहों, यदि कोई हो, तथा उसके द्वारा दिए गए किसी कथन को सुनने के पश्चात, कमान अधिकारी, अपने बनाए गए दृष्टिकोण के अनुसार, यदि साक्ष्य से कोई अपराध प्रकट नहीं होता है तो आरोप को खारिज कर सकता है, या अधिनियम की धारा 80 के अन्तर्गत मामले का संक्षिप्त निपटान कर सकता है, या मामले को उचित वरिष्ठ सैन्य प्राधिकारी को संदर्भित कर सकता है, या साक्ष्य को लिखित रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से मामले को स्थगित कर सकता है, या सारांश सेना न्यायालय द्वारा उसके विचारण का आदेश दे सकता है। [नियम 22(2) एवं (3)]

(iv) मान लीजिए कि कमान अधिकारी सेना न्यायालय द्वारा वाद के लिए मामले को वापिस भेजा जाता है, तो मामले को 'साक्ष्य के संक्षिप्त विवरण' के लिए स्थगित कर दिया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य अभियुक्त, कमान अधिकारी और संयोजक अधिकारी और सेना न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को आरोप या आरोपों के संबंध में साक्ष्य का संक्षिप्त विवरण देना है। कमान

अधिकारी स्वयं साक्ष्य का संक्षिप्त विवरण तैयार कर सकता है या ऐसा करने के लिए किसी अन्य अधिकारी को नियुक्त कर सकता है। उन साक्षीगण के बयान जो उपस्थित थे और कमान अधिकारी के समक्ष साक्ष्य दिए थे, चाहे वे अभियुक्त के विरुद्ध हों या अभियुक्त और किसी अन्य व्यक्ति के लिए, जिसके साक्ष्य प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, अभियुक्त की उपस्थिति और सुनवाई में लिखित रूप में लिए जाएंगे। [*नियम* 23(1)1]

(v) इस संबंध में 23 (3) *के तहत उल्लिखित चेतावनी भी अभियुक्त को अपना बयान दर्ज करने से पहले दी जानी चाहिए।*

(vi) अगला चरण अभियुक्त को दोषी ठहराना है। यह आरोपों को पढ़कर किया जाता है। फिर अभियुक्त से प्रत्येक आरोप के संबंध में अलग-अलग पूछताछ की जाती है कि क्या वह 'दोषी' या 'दोषी नहीं' होने का दावा करता है। यदि वह आरोप के लिए दोषी नहीं होने का दावा करता है तो अभियोजन पक्ष साक्ष्य की जांच करता है। अभियुक्त को अपना बचाव करने का पूरा अवसर दिया जाता है और उसे सैन्य जरुरतों या आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बचाव तैयार करने के लिए हर संभव सुविधा प्रदान की जाती है (नियम 36)। सैन्य संहिता अभियुक्त के अधिकारों के प्रति काफी उत्साही है। यह प्रावधान करता है कि न्यायालय अभियुक्त को अपना बचाव करने में बहुत अधिक स्वतंत्रता देगा, [नियम 77(3)]।

(vii) दोष की दलील दर्ज करने से पहले इस निर्णय में कहीं और उद्धृत नियम 115(2) के तहत एक प्रमाण पत्र अभियुक्त को दिया जाना आवश्यक है। उचित

मामले में नियम 116(2) के तहत उल्लिखित प्रक्रिया को भी अपनाना पड़ सकता है।"

19. ***<u>कर्नल पृथ्वी पाल सिंह बेदी बनाम भारत संघ,</u>*** एआईआर 1982 एससी 1413 मामले में यह मानते हुए कि सेना अधिनियम में सेना के नियमों को लागू किया जाना चाहिए और अनुच्छेद 21 की आवश्यकता को पूरा नहीं करने वाले नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए:

"*संसद के पास सशस्त्र बलों के सदस्यों पर लागू होने वाले संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को प्रतिबंधित या निरस्त करने की शक्ति है ताकि उनके बीच कर्तव्यों का उचित निर्वहन और अनुशासन बनाए रखा जा सके। अधिनियम एक ऐसा कानून है और इसलिए, अधिनियम के किसी भी प्रावधान को केवल इस आधार पर निष्फल नहीं किया जा सकता है कि वे संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को प्रतिबंधित या निरस्त करते हैं या प्रतिबंधित या निरस्त करते हैं और इसमें निर्विवाद रूप से अनुच्छेद 21 शामिल होगा। लेकिन इसके अलावा भी, इस दृष्टिकोण से सहमत होना संभव नहीं है कि जहां निर्धारित प्रक्रिया में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन निहित है, लेकिन उसे उस व्यक्ति के आग्रह पर निर्भर बनाती है जिसके खिलाफ जांच की जा रही है, तो यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा, जो यह प्रावधान करता है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा। यदि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया में नैसर्गिक*

न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन निर्धारित है, लेकिन उसे उस व्यक्ति के आग्रह पर निर्भर बनाती है जिसके खिलाफ ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जांच की जानी है, तो यह दलील स्वीकार करना कठिन है कि ऐसी प्रक्रिया अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगी। और जहां तक नियमों का संबंध है, उन्होंने अधिनियम द्वारा शासित अधिकारी और अधिनियम के अधीन किसी अन्य व्यक्ति के बीच स्पष्ट अंतर किया है। अभिव्यक्ति "अधिकारी;" इसे एक कमीशन प्राप्त व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ नियमित सेना में एक अधिकारी के रूप में कमीशन प्राप्त, राजपत्रित या वेतनभोगी व्यक्ति से है और इसमें निर्धारित विभिन्न अन्य श्रेणियां भी शामिल हैं। ***परिभाषा के अनुसार, अधिकारी सशस्त्र बलों में उच्च श्रेणी का व्यक्ति होगा और अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अधिकारी के अलावा कोई भी व्यक्ति अनिवार्य रूप से सेना सेवा में निम्न श्रेणी का व्यक्ति होगा। अब, निम्न श्रेणी से संबंधित ऐसे व्यक्तियों के संबंध में यह अनिवार्य है कि नियम 22, 23 और 24 का पालन किया जाना चाहिए और जांच को अमान्य करने के दर्द के अलावा इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है।***

20. उपर्युक्त मामले में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों पर भी ध्यान देना प्रासंगिक हो सकता है, अर्थात:-

उन्होंने कहा, 'सिविल कानून को लेकर अधिक चिंतित शीर्ष न्यायालय की सेना के आंतरिक मामलों में दखल देने की अनिच्छा से सैन्य कर्मियों के मन में एक विकृत तस्वीर बनने की संभावना है कि सेना अधिनियम के अधीन व्यक्ति भारत के नागरिक नहीं हैं। यह हमारे

संविधान की प्रमुख विशेषताओं में से एक है कि कोई व्यक्ति सशस्त्र रूप से भर्ती होकर या प्रवेश करके बल नागरिक नहीं रह जाते जिससे वह संविधान के तहत उसके अधिकारों से पूरी तरह वंचित हो जाए। राष्ट्रीय सुरक्षा और सैन्य अनुशासन के व्यापक हित में संसद अपने विवेक से सशस्त्र बलों के लिए अपने आवेदन में ऐसे अधिकारों को प्रतिबंधित या निरस्त कर सकती है, लेकिन इस प्रक्रिया को नागरिकों का एक वर्ग बनाने के लिए यहाँ तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जो संविधान की उदार भावना के लाभों के हकदार नहीं हैं। सेना अधिनियम के अधीन व्यक्ति इस प्राचीन भूमि के नागरिक हैं जो स्वतंत्रता उन्मुख संविधान द्वारा शासित सभ्य समुदाय से संबंधित होने की भावना रखते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता मनुष्य के मूल्य के लिए बनाती है और एक पोषित और बेशकीमती अधिकार है। इसके वंचन से पहले निष्पक्ष, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया सुनिश्चित करने वाली जाँच होनी चाहिए और निर्विवाद सत्यनिष्ठा वाले और पूर्णत निष्पक्ष न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जाना चाहिए। आपराधिक न्यायालय द्वारा किसी अपराध के विचारण की प्रक्रिया में एक उल्लेखनीय अंतर और सेना न्यायालय इस विभेदक उपचार से उत्पन्न असंतोष उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त है।

21. पूर्वोक्त कानूनी स्थिति को ले.पे.अ. सं. 254/2001, ***चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ एवं अन्य बनाम एक्स. 14257873 के सिग्म त्रिलोचन बेहरा*** में खण्ड

न्यायपीठ के नवीनतम निर्णय से भी समर्थन मिलता है, जिसका निर्णय दिनांक 17.1.2008 को हुआ था, कुछ अंशों का संदर्भ आवश्यक है:-

> "7. *प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान वर्ष 1984 में जारी एस.सी.एम. गाइड की ओर आकर्षित किया था, शीर्षक (ख) अभियोग के पृष्ठ 7 और 8 पर उल्लेख किया गया है:*
>
> *"(iii) यदि अभियुक्त आरोप के लिए दोषी होने की दलील देता है, तो एआर 115(2) के अनुसार सुनवाई करने वाले अधिकारी को अभियुक्तों को दलील के निहितार्थ समझाना चाहिए। उसे अभियुक्त की उपस्थिति में कार्यवाही के पृष्ठ "ख" पर निम्नलिखित अभिलेख भी बनाना चाहिए और उस पर उसके हस्ताक्षर प्राप्त करने चाहिए:-*
>
> *"अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत दोष-याचना को अभिलेख करने से पूर्व, न्यायालय अभियुक्त को उस आरोप (ओं) का अर्थ समझाता है, जिसके लिए उसने दोष-याचना की है, तथा यह सुनिश्चित करता है कि अभियुक्त उस आरोप (ओं) की प्रकृति को समझता है, जिसके लिए उसने दोष-याचना की है। न्यायालय ने अभियुक्त को उस दलील के सामान्य प्रभाव और उक्त दलील के परिणामस्वरूप अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में अंतर के बारे में भी सूचित किया। न्यायालय ने स्वयं को संतुष्ट करते हुए कहा कि अभियुक्त आरोप(ओं) और दोषी होने की अपनी दलील के प्रभाव को समझता है और उसे स्वीकार करता है तथा उसे दर्ज करता है। सेना*

नियम 115 (2) के प्रावधानों का अनुपालन किया जाता है।"

(*हस्ताक्षर*) (*हस्ताक्षर*)

अभियुक्त *न्यायालय*

iv) उप-पैरा 16(ख) (iii) में वर्णित प्रक्रिया का पालन न करना एआर 115 (2) में प्रदत्त प्रक्रियात्मक सुरक्षा का उल्लंघन और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जाएगा और दी गई सज़ा रद्द करनी होगी। (प्राधिकृत: मुख्यालय पश्चिमी कमान का पत्र सं. 0337/ए 3 दिनांक 30 अक्टूबर 84 परिशिष्ट एफ के रूप में संलग्न है और जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय का निर्णय, देखें प्रीतपाल सिंह बनाम भारत संघ (जम्मू और कश्मीर) 984 (3) एसएलआर 680)"।

22. खण्ड न्यायपीठ ने ***पृथपाल सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य*** (पूर्वोक्त) मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों पर भी भरोसा किया और उन्हें दोहराया है।

23. खण्ड न्यायपीठ ने ***सुकांत मित्रा बनाम भारत संघ और अन्य***, 2007 (2) 197 (जम्मू और कश्मीर) में हाल ही में प्रतिवेदित किए गए एक प्राधिकरण का भी हवाला दिया, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया था:-

"9. *इसके अलावा तथ्य यह है कि अपीलार्थी को उसके दोष की दलील के आधार पर दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है। न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोष की दलील पर अपीलार्थी के हस्ताक्षर नहीं हैं। इसलिए विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या हस्ताक्षर*

प्राप्त करना आवश्यक था। यूनियन ऑफ इंडिया अन्य बनाम पूर्व हवलदार क्लर्क पृथपाल सिंह एवं अन्य के.एल.जे. 1991 पृष्ठ 513 के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने टिप्पणी की है:

दूसरा बिन्दु जिसे प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दी गई सजा को रद्द करने का आधार बनाया गया है, नियम 115 के खंड (2) से संबंधित है। इस अनिवार्य प्रावधान के तहत न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह अभियुक्त की दोष-याचना दर्ज करने से पहले यह पता लगाए कि क्या अभियुक्त उस आरोप की प्रकृति को स्वीकार करता है जिसके लिए उसने दोष स्वीकार किया है और उसे उस दलील के सामान्य प्रभाव और विशेष रूप से उस आरोप के अर्थ के बारे में सूचित करेगी जिसके लिए उसने दोष स्वीकार किया है। कानून के इस प्रावधान के तहत न्यायालय को यह भी आवश्यक है कि वह अभियुक्त को उस याचिका को वापस लेने की सलाह दे यदि साक्ष्य के सारांश से ऐसा प्रतीत होता है या अन्यथा कि अभियुक्त को दोषी नहीं होने का अनुरोध करना चाहिए। इस प्रक्रिया का पालन कैसे किया जाए, यह इस मामले में शामिल प्रश्न का मुख्य सार है। नियम 125 में प्रावधान है कि न्यायालय सजा पर तारीख लिखेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा तथा ऐसे हस्ताक्षर उसे प्रमाणित करेंगे। हम यह मान सकते हैं कि दोष की दलील दर्ज करने के बाद भी अभियुक्त के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है, लेकिन सावधानी के तौर पर ऐसा किया जाना चाहिए था।"

24. अंत में, खण्ड न्यायपीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की: -

> "उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि उपरोक्त कार्यवाही कई प्रश्नचिह्नों से भरी हुई है। यह स्थिति भी विकृत है। यदि रोजगार से बर्खास्तगी एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है, भले ही वह ऐसी अभिकरण को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदार हो, तो उस प्रक्रिया का पूरी ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए। इस प्रकार ले.पे.अ को खारिज किया जाता है।

25. कुछ अन्य निर्णय भी महत्वपूर्ण हैं जहाँ सेना अधिनियम और नियमावली के तहत निर्धारित प्रक्रिया का गैर-अनुपालन घातक पाया गया है।

26. ***लांस दफेदार लक्ष्मण बनाम भारत संघ,*** *डी.आर.जे. 1992 (24) 125 में टिप्पणी की गई है:-*

> "श्री जोसेफ का तर्क सही नहीं है क्योंकि नियम 22 निस्संदेह परीक्षण से पहले के चरण से संबंधित है, लेकिन किसी भी जांच और परीक्षण को आयोजित करने का निर्णय इस नियम के तहत निर्धारित प्रक्रिया पर निर्भर करता है। इसलिए, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया अनिवार्य है और इसका अक्षरशः तथा भावना से पालन किया जाना चाहिए।

27. ***धनंजय रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य,*** (2001) 4 *एस.सी.सी. 9 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है: -*

"जहां कानून के अनुसार किसी काम को निश्चित तरीके से किया जाना चाहिए, तो उसे उसी तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं, अगर नियमों के अनुसार अभिलेख में किसी खास तरीके से स्वीकारोक्ति की आवश्यकता है, तो उसे उसी तरीके से किया जाना चाहिए था, नियमों का पालन न करने से स्वीकारोक्ति प्रभावित होती है, भले ही नियम 23 पर जाएं और इसे इस मामले के तथ्यों पर लागू करें, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त को जो सावधानी दी गई थी, वह अपराध की दलील दर्ज करने के बाद थी, न कि उससे पहले थी। इसके अलावा, इस मामले में साक्ष्य के सारांश के बारे में अभियुक्त के साक्ष्य के अलावा कोई साक्ष्य नहीं था।

उस मामले में यह भी माना गया था: नियम के अनुसार, साक्ष्य के सारांश का उद्देश्य कम करके नहीं आंका जा सकता। चूंकि साक्ष्य के सारांश का अभिलेख वह आधार बनता है जिसके आधार पर यह तय किया जाना है कि जनरल सेना न्यायालय आयोजित किया जाए या नहीं और चूंकि साक्ष्य के सारांश को अभिलेख करने के लिए नामित अधिकारी द्वारा गवाहों को अभिलेख करने के समय अभियुक्त को अभियोजन पक्ष के गवाहों से प्रति परीक्षा करने और अपने बचाव पक्ष के गवाहों को पेश करने का मौका दिया जाता है, इसलिए अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा अवसर न देना निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करेगा। साक्ष्य के सारांश को अभिलेख करने के लिए नामित अधिकारी द्वारा साक्ष्य अभिलेख करने के समय जिस प्रक्रिया का पालन किया जाना है, वह अनिवार्य है और इसका उल्लंघन करने पर जनरल सेना

न्यायालय सहित पूरी कार्यवाही अवैध हो सकती है और इसे रद्द किया जा सकता है।"

28. अभिलेख पर रखी गई सामग्री और साक्ष्यों और इस विषय पर कानून को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को दंडित करने में प्रत्यर्थी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अवैध है और कार्यवाही को नष्ट करती है; चूँकि;

(i) नियम 22 के अनुपालन के बारे में अभिलेख पर उपलब्ध प्रारूप उक्त नियम की अपेक्षा के अनुरूप नहीं है।

(ii) अभियुक्त व्यक्तियों के एक-दूसरे के विरुद्ध स्वीकारोक्ति दर्ज करना ज्ञापन के पैरा 4 में निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत है और सैन्य कानून नियम पुस्तिका (भाग-1) में उल्लिखित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है जो कार्यवाही को पूरी तरह से भ्रष्ट करता है।

(iii) नियम 23(3) के अंतर्गत दी जाने वाली अपेक्षित चेतावनी एक अलग पृष्ठ पर है और इसकी वास्तविकता के बारे में एक उचित संदेह पैदा करती है।

(iv) नियम 115(2) के संदर्भ में अभियुक्त के अपराध की दलील दर्ज करने से पहले पूर्व-अपेक्षा का पालन नहीं किया गया है और प्रमाण पत्र जो अभिलेख का एक हिस्सा है, एक अलग कागज पर है और फिर से इसकी प्रामाणिकता पर संदेह पैदा करता है।

(vi) नियम 116(2) के अंतर्गत अपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है।

29. इस प्रकार, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ की गई पूरी कार्यवाही, जो कि केवल एक ड्राइवर था और कोई अधिकारी नहीं था, तथाकथित जांच न्यायालय के चरण से लेकर, 'समरी ऑफ एविडेंस' और एससीएम दर्ज करने तक गंभीर प्रक्रियात्मक अनियमितता से ग्रस्त है और ऊपर बताए गए कारणों से मामले की जड़ पर प्रहार करती है। इसके परिणामस्वरूप, हम इसे और याचिकाकर्ता को दी गई सजा को भी रद्द करते हैं। उपरोक्त के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करना होगा, लेकिन बीच की अवधि के लिए उसे कोई वित्तीय लाभ नहीं मिलेगा। साथ ही, यदि प्रत्यर्थी चाहें तो नए सिरे से सेना न्यायालय आयोजित करने के लिए स्वतंत्र होंगे, लेकिन स्वतंत्र साक्ष्य, यदि कोई हो, दर्ज करके याचिकाकर्ता की याचिका को `दोषी नहीं`` के रूप में मानेंगे। यह काम पहले मामले का निर्णय करने वाले अधिकारियों के अलावा किसी अन्य अधिकारी द्वारा किया जाएगा। इस प्रकार प्रत्यर्थीगण को आज से तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है और यदि प्रत्यर्थीगण उक्त याचिकाकर्ता के खिलाफ नए सिरे से कोर्ट मार्शल कार्यवाही या कोई अन्य कार्यवाही करने का निर्णय लेते हैं, तो वे आज से अधिकतम छह महीने की अवधि के भीतर ऐसा कर सकते हैं। यह कहने की

जरूरत नहीं है कि उक्त कार्यवाही के समापन पर अभियुक्त/याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित किसी प्रतिकूल आदेश के मामले में, याचिकाकर्ता को कानून के अनुसार उसका निवारण पाने का अधिकार होगा।

30. तदनुसार, रिट याचिका का निपटान कर दिया गया है तथा पक्षकारगण को अपना खर्च स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

न्या. मूल चंद गर्ग

जुलाई 24, 2008 न्या. संजय किशन कौल

वीके/आरके

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*